□□□□□□□□□□□

जनसत्ता 27 मई, 2014 : नेहरू के बाद कौन? आज से पचास साल पहले यह सवाल रह-रह कर पूछा जाता था।

भारत के राजनीतिक पटल पर ही नहीं, उसके दिल-दिमाग पर नेहरू कुछ इस कदर छाए थे कि अनेक लोगों के लिए उनकी अनुपस्थिति की कल्पना करना कठिन था। लेकिन किसी भी मरणशील प्राणी की तरह नेहरू की भी मृत्यु हुई और लालबहादुर शास्त्री ने उनकी जगह प्रधानमंत्री का पद संभाला। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि खुद नेहरू ने शास्त्रीजी का नाम अपने उत्तराधिकारी के रूप में सुझाया था और उनके गुण गिनाते हुए कहा था कि उनकी कद-काठी और विनम्र व्यक्तित्व से इस भ्रम में न पड़ना चाहिए कि उनके अपने विचार नहीं हैं, वे स्वतंत्र मत के मालिक हैं और अत्यंत दृढ़ स्वभाव के व्यक्ति हैं। दूसरे, उनमें भिन्न प्रकार के लोगों को साथ लेकर चलने का गुण है, जो नेहरू के मुताबिक भारत का नेतृत्व करने के लिए अनिवार्य शर्त थी।

नेहरू के बाद कौन- के साथ ही बार-बार यह सवाल भी उठता था कि उनके बाद क्या होगा। कवि मुक्तिबोध, जो मार्क्सवादी थे, इस आशंका से इस कदर पीड़ित थे कि अपनी मृत्यु शय्या पर भी नेहरू के स्वास्थ्य के समाचार जानने के लिए व्याकुल रहते थे। 'अंधेरे में' कविता में वे सैन्य शासन की आशंका व्यक्त करते हैं।

सैन्य शासन या फौजी हुकूमत की आशंका मात्र कवियोचित कल्पना न थी। भारत-चीन युद्ध के समय नेहरू को सिर्फ अपने विरोधियों के नहीं, अपने समर्थकों के वार भी झेलने पड़े। उनके परम प्रशंसक कवि रामधारी सिंह दिनकर क्षुब्ध थे कि भारत अपने पौरुष का पर्याप्त प्रदर्शन नहीं कर रहा है। वे जगह-जगह कविताओं में अपना रोष व्यक्त कर रहे थे। भारत को सामरिक राष्ट्र बनाए बिना उपाय नहीं है, यह भावना चतुर्दिक व्याप्त थी। इसी समय नेहरू से दिनकर की एक लंबी मुलाकात हुई जिसका ब्योरा अपनी डायरी में देते हुए उन्होंने अंत में लिखा है, दूसरी भयानक बात उन्होंने यह कही, 'तुम देखोगे कि मेरे बाद तुम्हारे देश में प्रजातंत्र नहीं रहेगा, सैनिक शासन हो जाएगा।'

नेहरू की आशंका गलत साबित हुई। उनकी इच्छानुसार लालबहादुर शास्त्री ने उनके बाद प्रधानमंत्री का पद संभाला और फिर प्रत्येक सत्ता परिवर्तन शांतिपूर्ण तरीके से ही हुआ। पाश्चात्य देशों की यह समझ गलत साबित हुई कि इतनी विविधताओं वाले मुल्क में, जहां के अधिकतर मतदाता निरक्षर हैं, जनतंत्र जैसे आधुनिक विचार का स्थिर होना इतना आसान न होगा।

अभी जब सत्ता परिवर्तन एक बार फिर हुआ है और चुनावों के जरिए शांतिपूर्ण ढंग से ही हुआ है, नेहरू को याद करना अप्रासंगिक तो नहीं, विडंबनापूर्ण अवश्य है। उनकी मृत्यु के पचास वर्ष पूरे होने की पूर्व संध्या पर जिस व्यक्ति ने वह पद संभाला है, जिस पर कभी नेहरू थे, वह उस विचारप्रणाली की पैदाइश है, नेहरू जिसे भारत के विचार के लिए सबसे घातक मानते थे। नेहरू ने स्वतंत्र भारत के आरंभिक दिनों में भी, जब यह विचार और उसका संवाहक दल उनकी प्रतियोगिता करने की स्थिति में नहीं था, जनता को उसके खतरे से सावधान करते रहना अपना राजनीतिक कर्तव्य माना था। यह आश्चर्य की

बात लग सकती है और इस पर बहुत विचार नहीं किया गया है कि क्यों गांधी के अन्य अनुयायियों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचार को इतना विक्षिप्त नहीं माना जितना नेहरू ने।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन को आधुनिकता और सभ्यता के विचार से असंगत मानने के बावजूद नेहरू उसे हमेशा के लिए कानूनी तौर पर प्रतिबंधित करने और जनतांत्रिक प्रतियोगिता से जबरन बाहर कर देने के हामी नहीं थे। 1958 से 1963 के बीच 'ब्लिट्ज' के संपादक आर के करंजिया को उन्होंने कई इंटरव्यू दिए। उनमें से एक में करंजिया ने उनसे कहा कि जब भारत का अस्तित्व-तर्क ही धर्मनिरपेक्षता है तो वैसे दलों को यहां क्यों वैधानिक मान्यता मिलनी चाहिए जो सिद्धांततः इसके विरुद्ध हैं। उनका इशारा साफ था।

नेहरू ने किसी भी प्रकार के राजकीय प्रतिबंधकारी तरीके से किसी विचार का मुकाबला करने से असहमति जाहिर की। उन्होंने करंजिया को कहा कि जनतंत्र में यह नहीं किया जाना चाहिए। कोई भी विचार जो इस तरह दबाया जाएगा, कहीं न कहीं से विध्वंसकारी रूप में फूट निकलेगा जो समाज के लिए स्वास्थ्यकारी न होगा।

तर्क-वितर्क और बहस मुबाहसा ही जनतंत्र का खाद-पानी है। नेहरू ने इसके लिए संस्थानों और प्रक्रियाओं को स्थापित करने और उन्हें दृढ़ करने पर सबसे ज्यादा जोर दिया। इसका श्रेय सिर्फ उन्हें नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि यह संभवतः गांधी युग की विशेषता थी। नेहरू खुद को गांधी युग की संतान ही कहा करते थे। आज कोई ताज्जुब नहीं करता कि उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन के समय भी एक ही दल, कांग्रेस पार्टी के भीतर भी तीखी बहस सार्वजनिक रूप से चलती थी और इसे आंदोलन के लिए हानिकारक नहीं माना जाता था। गांधी और टैगोर के बीच की बहसें प्रसिद्ध हैं। खुद नेहरू और उनके राजनीतिक गुरु गांधी के बीच दशाधिक बार विवाद हुआ।

संसदीय व्यवस्था और प्रक्रिया को नेहरू ने सबसे अधिक महत्त्व दिया। वे खुद जल्दी नाराज हो जाने वाले व्यक्ति के रूप में मशहूर थे, लेकिन नेहरू-काल की संसदीय बहसों के रिकॉर्ड से मालूम होता है कि उन्होंने न से न सदस्य के मत को उतने ही सम्मान के साथ सुना और उसका उत्तर दिया जितना अपने हमउम्रों का। नेहरू ने आलोचनाओं से बचने के लिए स्वाधीनता आंदोलन में अपनी भूमिका की आड़ नहीं ली। आम समझ के विपरीत, नेहरू को प्रधानमंत्री के रूप में कठोर आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपनी अद्वितीय स्थिति का लाभ उठा कर किसी से किनारा न किया। उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि उन पर आक्रमण का दुस्साहस कैसे किया जा सकता है। इसके ठीक उलट अटल बिहारी वाजपेयी थे जो अपनी किसी भी आलोचना पर हमेशा ताज्जुब जाहिर करते थे कि उन जैसे महान व्यक्ति की कैसे आलोचना की जा सकती है।

नेहरू के लिए सबसे बड़ी चुनौती किसी प्रश्न पर असहमतियों के बीच एक रास्ता बनाने की थी। कांग्रेस के बहुमत के सहारे किसी भिन्न मत को नजरअंदाज कर देना आसान था। अधीर माने जाने वाले नेहरू को पता था कि धैर्यपूर्ण संवाद ही जनतंत्र का आधार है। हिंदू कोड बिल को उन्होंने विरोध के कारण वापस लिया। विधिमंत्री आंबेडकर ने इस संसदीय विरोध से आहत और क्षुब्ध होकर इस्तीफा दे दिया, लेकिन नेहरू ने आहिस्ता-आहिस्ता सदन को इसके अलग-अलग पक्षों के लिए तैयार किया।

नेहरू की करिश्माई शख्सियत पर संसद के बाहर भी हमले होते थे। लोकसभा के दूसरे चुनाव के ठीक पहले महाराष्ट्र में उन्हें शिवाजी की प्रतिमा के अनावरण के लिए निमंत्रित किया गया। इसे लेकर भारी विरोध उठ खड़ा हुआ। न सिर्फ मराठा राजनेताओं ने, बल्कि संस्कृतिकर्मियों और लेखकों ने नेहरू को पत्र लिख कर और सार्वजनिक बयान के जरिए कहा कि वे इस काम के लिए सुपात्र नहीं हैं और सर्वथा अनुपयुक्त हैं क्योंकि 'भारत की खोज' नामक अपनी किताब में उन्होंने शिवाजी को गौरव नहीं दिया है। यह विरोध कितना व्यापक था, इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि कम्युनिस्ट पार्टी के

नेता श्रीपाद अमृत डांगे ने भी नेहरू को पत्र लखि कर अपना वरिोध जताया□

यह प्रसंग रोचक है□ नेहरू ने बाकी वरिोधयिों को उत्तर दयिा और स्पष्ट कयिा कि वे जेल में कतिाब लखि रहे थे और उस वक्त उनके पास प्राय: अंगरेज इतहिासकारों के ही संदर्भ थे□ बाद में शविाजी को लेकर अन्य वद्वित्तापूर्ण संदर्भों के आधार पर कतिाब के बाद के संस्करण में उनके बारे में अपने मत में उन्होंने बदलाव कयिा था□ डांगे को भी उन्होंने अलग से खत लखिा□ बहरहाल! अपना पक्ष सही मानते हु□ भी नेहरू ने प्रतमिा अनावरण में जाना स्थगति कर दयिा□ उनके मुताबकि इसका □क कारण यह भी था कि आम चुनाव सामने थे और वे शविाजी की प्रतमिा के अनावरण के सहारे कोई अतरिक्ति लाभ महाराष्ट्र में लेना नैतकि रूप से अनुचति मानते थे□

नेहरू ने जनता में अपनी लोकप्रयिता का लाभ उठा कर संसदीय वचिार-वमिर्श के जरि□ नर्णिय लेने की प्रक्रयिा को दूषति और बाधति करने का प्रयास नहीं कयिा और कभी भी खुद को कांग्रेस पार्टी या देश के लि□ अनविार्य भी नहीं माना□ वल्लभ भाई पटेल से उनके मतभेद जगजाहरि हैं□

प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के रूप में दोनों का साथ काम करना, वह भी उस कठनि घ□ी में कतिना जरूरी था लेकनि दोनों में बुनयिादी मसलों और तौर-तरीकों को लेकर मतांतर था□ आरंभ में ही प्रधानमंत्री के अधकिार और कैबनिेट व्यवस्था में अन्य मंत्रयिों के साथ उसके समीकरण को लेकर मतभेद पैदा हु□ □ प्रकरण अजमेर में हुई ग□ब□यिों के प्रसंग में प्रधानमंत्री के सीधे हस्तक्षेप का था जो उन्होंने अपने दूतों के माध्यम से कयिा था□ पटेल के मुताबकि यह लोकतांत्रकि शासन पद्धत का उल्लंघन था क्योंकि यहां संबद्ध मंत्री को कनिारे करके प्रधानमंत्री सीधे काम कर रहे थे□

सौभाग्य से तब गांधी जीवति थे, हालांकि कसिी को अंदाजा न था कि उनकी मृत्यु मात्र पच्चीस दनि दूर थी□ पटेल ने अपनी बात गांधी को लखिी और नेहरू ने भी अपना पक्ष सामने रखा□ नेहरू ने प्रधानमंत्री के रूप में अपनी भूमकिा समन्वयक और पर्यवेक्षक की देखी□ कसिी भी मंत्री के काम में दखलंदाजी का सवाल न था□ लेकनि वे इसे लेकर भी स्पष्ट थे कि जरूरत प□ने पर प्रधानमंत्री को अपने नर्णिय के अनुसार सीधे फैसला करने और हस्तक्षेप की आजादी होनी चाहि□, इसका ध्यान रखते हु□ कि स्थानीय अधकिारयिों के काम में अनुचति और अनावश्यक हस्तक्षेप न हो□

पटेल और नेहरू के बीच मतभेद का समाधान सरल न था□ नेहरू ने लखिा कि ऐसी हालत में वे खुशी-खुशी पद छो□ने को तैयार हैं□ इसका अर्थ फरि यह न नकिाला जाना चाहि□ कि वे दोनों स्थायी वरिोधी हैं□ नेहरू ने साथ ही संक्रमण के उस दौर की गंभीरता को देखते हु□ उन दोनों में से कसिी के भी सरकार से अलग होने को गांधी ने मुनासबि न माना और कुछ महीने इंतजार का मशवरिा दयिा□ चंद रोज बाद ही दोनों के गुरु की हत्या ने इस अलगाव को हमेशा के लि□ टाल दयिा□

गांधीवादयिों में अधकितर के लि□ यह अब तक □क गुत्थी रही है कि गांधी ने नेहरू को क्यों अपना उत्तराधकिारी चुना□ इसके दो कारण हो सकते हैं: □क, गांधी का भारत हिंदू-राष्ट्र नहीं हो सकता था और वे अपने अनुभव से पहचान सके थे कि नेहरू की परष्किृत नागरकि संवेदना उन्हें इस मामले में कोई समझौता नहीं करने देगी□ दूसरे, संसदीय लोकतंत्र की प्रणालयिों को लेकर नेहरू की प्रतबिद्धता पर उन्हें भरोसा था□ उन्हें यह मालूम था कि नेहरू आत्मग्रस्त और आत्ममुग्ध न थे, खुद पर हंस सकते थे और आत्मस्थ थे□

नेहरू ने खुद लखिा है कि नारे लगाती भी□, राजनीत का गर्दोगुबार उन्हें सर्फि सतह पर छू पाता है, अपने बहुत अंदर वचिारों, कामनाओं और वफादारयिों

का संघर्ष वे झेलते है, उनका अवचेतन बाहरी परस्थितियों से जूझता रहता है और वे इनमें संतुलन की तलाश करते रहते है□

नेहरू के बाद कौन और क्या का उत्तर उनके हिदुस्तान ने बार-बार उनकी जुबान में ही दिया है□ क्या हुआ कि कभी-कभी उसके चुनाव से वे चकित हो उठें! आखिर चुनावों की आजादी का रास्ता तो उन्होंने ही हमवार किया था!

फेसबुक पेज को लाइक करने के लि□ क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लि□ क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta